अध्याय-2

सांख्ययोग-नामक दूसरा अ0।।

[1-10 अर्जुन की कायरता के विषय में श्रीकृष्णार्जुन-संवाद]

संजय उवाच-तं तथा कृपया आविष्टं अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं। विषीदन्तं इदं वाक्यं उवाच मधुसूदनः।। 2/1

मधुसूदनः तथा कृपयाविष्टं	मधु जैसे मीठे काम के हन्ता {शिवबाबा} ने इस प्रकार {सम्बन्धियों के मोह में} करुणा से भरे,
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं विषीदन्तं तमिदं वाक्यमुवाच	अश्रुपूर्ण व्याकुल नेत्रों से विषादयुक्त हुए उस अर्जुन को यह वचन बोले।

भगवानुवाच-कुतस्त्वा कश्मलं इदं विषमे समुपस्थितं। अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं अकीर्तिकरं अर्जुन।। 2/2

अर्जुन विषमे अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं इदं	हे अर्जुन! असमय में अनार्यसेवित, स्वर्ग में न ले जाने वाली यह {सामाजिक}
अकीर्तिकरं कश्मलं त्वा कुतः समुपस्थितं	अपकीर्तिकारक मलिनता, {क्षत्रिय होते हुए भी} तुझे कहाँ से आ गई?

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वयि उपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ परन्तप।। 2/3

पार्थ क्लैब्यं मा स्म गमः एतत्त्वयि उपपद्यते	हे पृथ्वीराज! नपुंसक मत बनो। ये तुम्हारे {कुल में प्रशंसा के} योग्य
न परंतप क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ	नहीं। हे शत्रुतापी! क्षुद्र हृदय की {आकस्मिक} दुर्बलता छोड़कर उठो।

अर्जुन उवाच-कथं भीष्मं अहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन। इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हौ अरिसूदन।।2/4

मधुसूदन भीष्मं च द्रोणं प्रति	हे {मधु जैसे मिठास भरे} काम के हंता! भीष्म {जैसे बाबाओं} और {महान प्राचार्य} द्रोण के प्रति
संख्येऽहमिषुभिः कथं योत्स्यामि	{धर्म-} युद्ध में मैं {ज्ञान-} बाणों से {कटाक्षपूर्वक अपमान से} कैसे युद्ध करूँगा?
अरिसूदन पूजार्हौ	हे कामारिमर्दन! {वे मुझे बचपन से ही बहुत प्यार देते आ रहे हैं; सम्माननीय और} पूजनीय हैं।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपि इह लोके। हत्वार्थकामान् तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ।। 2/5

महानुभावान् गुरून् अहत्वा हि	महानुभाव गुरुओं को {उनके धर्म में अनिश्चय की मौत} मारने की अपेक्षा
इह लोके भैक्ष्यं भोक्तुं अपि श्रेयो	इस लोक में भीख माँगकर खाना भी अच्छा है; {क्योंकि मान-मर्तबा के लोलुप&}
अर्थकामान् गुरून् हत्वा तु इह	धनेच्छुक गुरुओं को {स्वधारणायुक्त जीवनशैली से} मारकर तो यहाँ
रुधिरप्रदिग्धान् भोगान् एव भुंजीय	{विकल्पों के} खून से सने {आत्मग्लानि से भरे हुए इन} भोगों को ही भोगूँगा।

न चैतद्विद्मः कतरत् नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः। यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।। 2/6

च नो कतरत् गरीयः वा यत् जयेम	और हमारे लिए क्या श्रेष्ठ है? अथवा कि हम {धर्मयुद्ध में निश्चित रूप से} जीतेंगे
वा यदि नो जयेयुः एतत् न विद्मः	अथवा यदि {वे} हमें जीतेंगे- यह {भविष्यफल ठीक-2 हम} नहीं जानते।
यान् हत्वा न जिजीविषामः एव	जिन्हें मारकर {हम} जीना ही नहीं चाहते, {संकल्पों के खराब खून वाले}
ते धार्तराष्ट्राः प्रमुखे एव अवस्थिताः	वे {राष्ट्र की पूंजी स्वार्थ में धरे बैठे} धृतराष्ट्र के पुत्र {कौरव} सामने ही खड़े हैं।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नं।। 2/7

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः	{नीचे गिरी हुई पापपूर्ण कलियुगी मन-बुद्धि की} दीनता के दोष से विकृत स्वभाव वाला,
धर्मसम्मूढचेताः त्वां पृच्छामि	सत्धर्म {कर्म} की बातों में महामूर्ख {मैं} आप {त्रिकालदर्शी भगवान} से पूछता हूँ।
यच्छ्रेयः निश्चितं स्यात्तन्मे ब्रूहि	{मेरे लिए} जो भलाई की {सद्धर्मानुकूल ऐसी} निश्चित् बात हो, वह मुझे बताइए।
अहं ते शिष्यः त्वां प्रपन्नं मां शाधि	मैं आपका शिष्य हूँ, {हर प्रकार से} आपकी शरण में हूँ। मुझे शिक्षा दीजिए।

न हि प्रपश्यामि मम अपनुद्यात् यत् शोकं उच्छोषणं इन्द्रियाणां। अवाप्य भूमौ असपत्नं ऋद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यं।। 2/8

हि भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं च सुराणां	क्योंकि पृथ्वी पर शत्रुविहीन ऐश्वर्यवान {सारे विश्व का} राज्य और देवों का

आधिपत्यं अवाप्य अपि यत् इन्द्रियाणां	स्वामित्व पा करके भी, {आप सर्वशक्तिवान के सिवा} जो इन्द्रियों को
उच्छोषणं मम शोकं अपनुद्यात् न प्रपश्यामि	सुखाने वाले मेरे शोक को दूर करे, वैसा {कल्याण मैं} नहीं देखता।

संजय उवाच-एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप। न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।। 2/9

परंतप गुडाकेशः हृषीकेशं गोविन्दं	शत्रुतापक-निद्राजीत अर्जुन {ह्रूमन बछियों के प्रकृतिवेत्ता} जितेन्द्रिय गोविन्द से
एवमुक्त्वा 'न योत्स्य इति'	ऐसा {स्पष्ट} कहकर '{कि मैं सम्मानीय गुरुजनों से धर्म-निर्णायक} युद्ध नहीं करूँगा' - इतना
ह उक्त्वा तूष्णीं बभूव	सीधा कहकर {अभी-2 दुःख & संशयहर्ता की सीख को मानके भी, ना करके} चुप हो गया।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत। सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तं इदं वचः।। 2/10

भारत उभयोः सेन्योर्मध्ये	हे भरतवंशी राजा! {यादव सेना-सहित कौरवों&पाण्डवों} दोनों सेनाओं के बीच में
विषीदन्तं तं हृषीकेशः	शोकाकुल उस {भीड़ भरे माहौल में मायूस हुए} अर्जुन से इंद्रियजीत/ {जगत्जीत} शिवबाबा
प्रहसन् इव इदं वचः उवाच	प्रसन्न हुए के समान {उसका उमंग-उत्साह बढ़ाने लिए} यह वचन कहने लगे।

[11-30 सांख्ययोग का विषय]

भगवानुवाच-अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। गतासूनगतासूनंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।। 2/11

त्वं अशोच्यान् अन्वशोचः च	तू अशोचनीय {सन्नद्ध विनाशी दैहिक संबंधों का} शोक कर रहा है तथा {दुःखी होते-2 भी}
प्रज्ञावादान् भाषसे पण्डिताः	{आत्म} ज्ञानियों-जैसे वचन बोलता है। विद्वान लोग {सदधर्म के प्रति अनिश्चय से}
गतासूंश्च अगतासून् नानुशोचन्ति	मरने और {विधर्मियों ऊपर निश्चय में} जीने वालों का शोक {कभी} नहीं करते।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परं।। 2/12

अहं जातु नासं न एव त्वं न	मैं {अक्षयात्मज्योतिरूप शिव} कोई समय न था- ऐसा नहीं है, {ऐसे ही} तू नहीं
इमे जनाधिपाः एव न च अतः परं	{था अथवा} ये नेतागण ही नहीं {थे} और अब बाद में {बेहद ड्रामा के आत्म-स्टाररूप}
वयं सर्वे न भविष्यामः न	हम सब नहीं होंगे- {ऐसा भी} नहीं है। {हम आत्माएँ अविनाशी हैं, देह विनाशी है।}

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिः धीरस्तत्र न मुह्यति।। 2/13

यथा देहिनोऽस्मिन्देहे कौमारं यौवनं	जैसे आत्मा की इस देह में{उत्तरोत्तर सत-रज-तम वाली} कुमार, युवावस्था {और}
जरा तथा देहांतरप्राप्तिः	बुढ़ापा है, वैसे ही {चतुर्युगी में क्षीण बल-वीर्य के} दूसरे-2 शरीरों की प्राप्ति होती है।
धीरः तत्र न मुह्यति	{सच्ची गीता ज्ञान से आत्मस्थ} धैर्यवान् {ब्रह्मावत्स कभी भी} उस विषय में मोह नहीं करते।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्याः तान् तितिक्षस्व भारत।। 2/14

कौन्तेय मात्रास्पर्शास्तु शीतोष्ण-	हे कुंती-पुत्र! {कर्म-} इन्द्रियों के विषय तो {घड़ी-2 परिवर्तनशील} सर्दी-गर्मी,
सुखदुःखदाः आगमापायिनः	सुख-दुःख-दाता हैं, आने-जाने वाले हैं, {अधोगामी स्वर्गीय सुखों की भेंट में भी}
अनित्याः भारत तांस्तितिक्षस्व	अनित्य हैं। हे भरतवंशी! उनको {तू अपनी किसी भी तिकड़म बिना} सहन कर।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।। 2/15

पुरुषर्षभ समदुःखसुखं	हे {भोगी} आत्मारूप पार्टधारियों में सर्वश्रेष्ठ! दुःख-सुख में समान {रहने वाले}
यं धीरं पुरुषं एते न व्यथयन्ति	जिस धैर्यवान पुरुष को ये {कोई भी विषय-भोग, कर्म करते भी} व्यथित नहीं करते,
सः हि अमृतत्वाय कल्पते	वह {आत्मज्योति में एकाग्र व्यक्ति} अवश्य ही अमरत्व के लिए योग्य बनता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टः अंतः तु अनयोः तत्त्वदर्शिभिः।। 2/16

असतः भावः न विद्यते तु सतः	असत का अस्तित्व नहीं होता एवं {कोई भी} सत्य का {कल्पांतकारी महाविनाश में}
अभावः न विद्यते	{या किसी भी चतुर्युगी में} अभाव नहीं होता। {जैसे सृष्टि-बीज/महादेव/आदम देह से भी सदाकाल है & रहेगा।}
अनयोरुभयोरप्यन्तः तत्त्वदर्शिभिर्दृष्टः	इन {सदसत} दोनों का भी निर्णय {कपिल जैसे} तत्वज्ञानियों द्वारा देखा गया है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततं। विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। 2/17

येन इदं सर्वं ततं	जिस {मानवीय सृष्टिवृक्ष के बीज महादेव} द्वारा यह सारा {अश्वत्थ नामक सृष्टिवृक्ष} फैला है,
तत्त्वविनाशि विद्धि अस्याव्ययस्य	उसको तो अविनाशी जान। इस अविनाशी {जगत्पिता स्वरूप साकार बीज} का
विनाशं कर्तुं कश्चित् न अर्हति	विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। {कल्पांत में भी वह अकालमूर्त है।}

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्मात् युध्यस्व भारत।। 2/18

नित्यस्य अनाशिनः अप्रमेयस्य	{ऐसे तो} नित्य, अविनाशी, माप न करने योग्य {अन्य सभी अणुरूप/अतिसूक्ष्म}
शरीरिणः इमे देहाः अन्तवन्तः	देहधारी आत्माओं के ये शरीर {चतुर्युगी के जन्म-जन्मान्तरों में भी} नाशवान्
उक्ताः तस्मात् भारत युध्यस्व	कहे हैं, अतः हे भरतवंशी! {धर्म-} युद्ध कर। {क्योंकि आत्म-धर्म ही अविनाशी है।}

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतं। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।। 2/19

य एनं हन्तारं वेत्ति च यः एनं	जो इस {देहधारी आत्मा} को मारने वाला समझता है और जो इसे {कभी}
हतं मन्यते तौ उभौ न विजानीतः	मरा हुआ मानता है, वे दोनों {ही ठीक} नहीं जानते। {वो देहरूप वृक्ष का बीज है।}
अयं न हन्ति न हन्यते	यह {आत्मा कल्पांत के महाविनाश में भी} न {किसी को} मारता है {और} न मारा जाता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजः नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।2/20

अयं कदाचिन्न जायते वा न म्रियते	यह कभी न जन्मता है और न मरता है, {हाँ! सहज-2 देहरूप वस्त्र उतारता भी है}
वा भूत्वा भूयः न भविता	या होकर फिर से {सृष्टि रंगमंच पर} नहीं होगा- {ऐसे भी नहीं है}।
अजः नित्यः शाश्वतः पुराणोऽयं	अजन्मा, नित्य, सनातन, {कल्प-2 की शांत स्वधर्म वाली} पुरातन यह
शरीरे हन्यमाने न हन्यते	{अविनाशी आत्मा}, देह हनन {कराने के उपक्रम} होते {भी} नहीं मारा जाता।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययं। कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कं।। 2/21

पार्थ य एनं नित्यं अजं अव्ययं	हे पृथ्वीपति! जो इस {ज्योतिर्मय अणुरूप आत्मा} को नित्य, जन्मरहित, अक्षय
अविनाशिनं वेद स पुरुषः	{व} अविनाशी जानता है, वह {अपने स्वभाव-संस्कार की अविनाशी} आत्मा
कं कथं घातयति कं हन्ति	{होते भी} किसको कैसे मरवाता है {और यहाँ प्रकृति के अधीन भी} किसको मारता है?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। 2/22

यथा नरः जीर्णानि वासांसि विहाय अपराणि	जैसे {स्वर्ग में आत्माभिमानी श्रेष्ठ} मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे
नवानि गृह्णाति तथा जीर्णानि शरीराणि	नए {स्वेच्छा से} ग्रहण करता है, उसी प्रकार {नरनिर्मित नरक में देहभानी} पुराने शरीरों को
विहाय देही अन्यानि नवानि संयाति	{अपनी अनिच्छा से} छोड़कर आत्मा दूसरे नए {शरीरों} को {बरबस} ग्रहण करती है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्ति आपः न शोषयति मारुतः।। 2/23

एनं शस्त्राणि न छिन्दन्ति एनं पावकः	इस {आत्मा} को शस्त्र नहीं काटते, इसको {अन्य जड़त्वमय तत्वों जैसी} अग्नि
न दहति एनं मारुतः न शोषयति च	नहीं जलाती, इसको {अदर्शनीय} हवा नहीं सुखाती और {ईश्वरीय ज्ञान-जल}
आपः न क्लेदयन्ति	{की पवित्रता के सिवाय} जल नहीं भिगोता। {प्रत्येक चतुर्युगी पूर्व के महाविनाश में भी यही बात है।}

अच्छेद्यः अयं अदाह्यः अयं अक्लेद्यः अशोष्यः एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। 2/24

अयमच्छेद्यो अयमदाह्यः अक्लेद्यः	यह {आत्मज्योतिर्बिंदु सदा} अकाट्य है और {अग्नि-जल द्वारा कभी} न ही जलता-भीगता है।
चैव अशोष्यः अयं नित्यः स्थाणुः	और निस्संदेह {गर्म हवा से कभी} सूखता नहीं। यह नित्य {अविनाशी} है, स्थितशील है।
सर्वगतः सनातनः अचलः	{मन-बुद्धि जैसी अदर्शनीय शक्ति होने से त्रिलोक में} सर्वगामी है, सनातन {और} अचल है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुं अर्हसि।। 2/25

अयं अव्यक्तः अयमचिन्त्यः अयं	यह अव्यक्त है। यह अचिन्त्य है। यह {विनाशी पंचभूतों का संग न रहने पर सदा}
अविकार्यः उच्यते तस्मात् एनं एवं	निर्विकारी बताई जाती है। इसलिए इसको ऐसा {पृथ्वी-जलादि पञ्चभूतों से पृथक्}
विदित्वा अनुशोचितुं न अर्हसि	जानकर शोक करने के योग्य नहीं है; {क्योंकि आत्मा सुख-शांति रूप है।}

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतं। तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।। 2/26

च अथ एनं नित्यजातं वा नित्यं मृतं मन्यसे	और यदि इसे सदा जन्मने वाला अथवा नित्य मरने वाला मानता है,
तथापि महाबाहो त्वमेवं शोचितुं नार्हसि	तो भी हे {अष्टमूर्तियों वाला} दीर्घबाहु! तू इस तरह शोक करने योग्य नहीं है;

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।। 2/27

हि जातस्य मृत्युः ध्रुवः च मृतस्य	क्योंकि जन्मने वाले की मृत्यु निश्चित है और {उसी तरह देह द्वारा} मरने वाले का
जन्म ध्रुवं तस्मादपरिहार्ये अर्थे	जन्म निश्चित है; {देहभान है तो जन्म-मृत्यु भी रहेगी।} अतः न टलने योग्य बात में
त्वं शोचितुं अर्हसि न	{अविनाशी ड्रामा समझ} तू शोक करने योग्य नहीं है। {कल्प-2 जन्ममृत्यु का दुख नरक में होता ही है।}

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। 2/28

भारत भूतानि आदीनि अव्यक्तः	हे भरतवंशी! {सृष्टि-आदिकाल में भी} प्राणियों का {अंत और} आदि अदृश्य है।

व्यक्तमध्यानि अव्यक्तनिधनान्येव	मध्य {जीवन} व्यक्त है। मृत्यु बाद {या कल्पान्त/महाविनाश} में भी अव्यक्त हैं।
तत्र का परिदेवना	उस {हूबहू कल्प की आवृत्ति} में क्या शोक करना? {किंतु पु. संगम में 100% आत्मस्थ बन जाने से}

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चित् एनं आश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवत् चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।। 2/29

एनं कश्चित् आश्चर्यवत् वदति चान्यः	इस {हीरो}• को कोई {नं.वार जानकार} आश्चर्य से बताता है और दूसरा
तथैव आश्चर्यवत् पश्यति च अन्यः	वैसे ही आश्चर्य से देखता है और दूसरा {कोई कुछ जानते हुए भी}
एनं आश्चर्यवत् एव शृणोति च कश्चित्	इसको आश्चर्य से ही सुनता है और कोई {अनास्थावान नास्तिक पूरा-अधूरा}
श्रुत्वा अपि एनम् न वेद	{अनमने से} सुनकर भी इसे नहीं जान पाता। {इसीलिए संसार में नं. वार सुख-भोगी हैं।}

•{शंकर क्या करते हैं? उन (हीरो) का पार्ट ऐसा वण्डरफुल है जो तुम विश्वास कर न सको। (मु.ता.14.5.70 पृ.2 आदि)}

देही नित्यं अवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत। तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।। 2/30

भारत अयं देही सर्वस्य देहे	हे ज्ञान-आभा में रत अर्जुन! यह {सृष्टि-बीज हीरो, परम+} आत्मा सबके शरीरों में {पुरुषोत्तम संगम के
नित्यं अवध्यः तस्मात् त्वं	नं.वार पुरुषार्थ से प्राप्त सहजराजयोग की ऊर्जा से} सदा अवध्य है। इसलिए तू {इस}
सर्वाणि भूतानि शोचितुं नार्हसि	{धर्मयुद्ध में हाज़िर} सभी प्राणियों का {भी इतना} शोक करने के लिए योग्य नहीं है।

[31-38 क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध करने की आवश्यकता का निरूपण]

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। धर्म्यात् हि युद्धात् श्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।। 2/31

च स्वधर्मं अपि अवेक्ष्य विकम्पितुं	इसके अलावा अपनी आत्मा के {क्षात्र-} धर्म को भी देखकर {तू} विचलित होने
न अर्हसि हि धर्म्यात् युद्धात्	योग्य नहीं है; क्योंकि धर्मयुद्ध के सिवाय {चारों वर्णों में विशेष रूप से तेरे जैसे}
क्षत्रियस्य अन्यत् श्रेयः न विद्यते	क्षत्रिय के लिए {क्षात्रधर्म से मिली राज्य-रक्षा सिवा कोई} दूसरा कल्याण नहीं है।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारं अपावृतं। सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशं।। 2/32

यदृच्छया उपपन्नं च अपावृतं स्वर्गद्वारं	{सिविलवार द्वारा} अनायास प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार वाले
ईदृशं युद्धं पार्थ सुखिनः क्षत्रियाः लभन्ते	ऐसे• {महान धर्म-} युद्ध को हे पृथ्वीपति! सुखी क्षत्रियजन {ही} पाते हैं।

•जो (मायावी विकारों के) युद्ध के मैदान में (देह वा) देहभान को छोड़ेंगे, वे स्वर्ग में आवेंगे। (मुरली ता.6.5.67 पृ.1 अंत)}

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।। 2/33

अथ चेत् त्वम् इमं धर्म्यं संग्रामं	किन्तु यदि तू {गेट वे टू हैविन वाला} यह धार्मिक {अहिंसक महाभारत} युद्ध
न करिष्यसि ततः स्वधर्मं च कीर्तिं	नहीं करेगा, तो {अल्लाह अव्वलदीन के सत्य सनातन} स्वधर्म और कीर्ति को
हित्वा पापं अवाप्स्यसि	नष्ट करके {द्वैतवादी नारकीय दैत्यों की हिंसक धर्मवृद्धि के} पाप का {ही} भागी बनेगा

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययां। सम्भावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते।। 2/34

च भूतानि अव्ययां ते अकीर्तिं कथयिष्यन्ति च	और {संसार के दुःखी-अशांत} लोग निरंतर तेरी अपकीर्ति करेंगे और
सम्भावितस्याकीर्तिः मरणादपि अतिरिच्यते	सम्मानित व्यक्ति के लिए {यहाँ} अपकीर्ति मौत से भी बढ़कर है।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः। येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवं।। 2/35

महारथाः त्वां भयात् रणात्	महारथी तुझको {क्षत्रिय योद्धा होते हुए भी विरोधियों के} भय से {धर्म-} युद्ध से
उपरतं मंस्यन्ते च येषां त्वं	{भयभीत व} विमुख हुआ मानेंगे और जिनके {मन में} तेरा {महानतम धनुर्धर होने का इतना}
बहुमतोभूत्वा लाघवं यास्यसि	अधिक मान है, {वे ही अविनाशी भारत के सत्यसनातनी लोग तुझको} तुच्छ समझेंगे।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः। निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किं।। 2/36

च तव अहिताः तव सामर्थ्यं	और तेरे {ढाई हज़ार वर्षों से सदा विधर्मियों में कन्वर्टिड} विरोधी तेरे सामर्थ्य की

निन्दन्तः बहूनवाच्यवादान्	निंदा करते हुए बहुत-सी {गन्दी, असहनीय& सरासर झूठी ग्लानि भरी} अनकहनी बातें
वदिष्यन्ति ततः दुःखतरं नु किं	बोलेंगे, उससे बढ़कर {सांसारियों से मुँह छुपाने जैसा} और क्या {बड़ा} दुःख होगा?

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीं। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।2/37

कौन्तेय वा हतः स्वर्गं प्राप्स्यसि	हे {देहभान-नाशिनी} कुन्तीपुत्र! या {हौसले से लड़ते-2} मौत पाई तो स्वर्ग पाएगा
वा जित्वा महीं भोक्ष्यसे तस्मात्	अथवा जीतकर {देवासुरात्माओं की सारी} धरणी को भोगेगा; इसलिए {गेट वे टू हैविन}
युद्धाय कृतनिश्चयः उत्तिष्ठ	{महाभारत} युद्ध के लिए निश्चय कर उठ खड़ा हो। {विश्वविजय तेरा ही जन्मसिद्ध अधिकार है।}

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापं अवाप्स्यसि।। 2/38

सुखदुःखे लाभालाभौ जयाजयौ	सुख-दुःख को, लाभ-हानि को {और} जय-पराजय {रूप इन सभी सांसारिक द्वंद्वों} को
समे कृत्वा ततः युद्धाय युज्यस्व	समान {मान} करके, {स्वयं स्थिर हो} बाद में{धर्म-} युद्ध के लिए तैयार हो जा।
एवं पापं न अवाप्स्यसि	ऐसे {देहधारियों के बेलगाव में रहने से आत्मा को} पाप नहीं लगेगा। (दे. गी.18-17)

[39-53 कर्मयोग का विषय]

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे तु इमां शृणु। बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।। 2/39

पार्थ एषा बुद्धिः ते सांख्ये	हे पृथ्वीपाल अर्जुन! यह मत तेरे {ही आदिरूप कम्पिलावासी कपिलमुनि के} सांख्यशास्त्र में
अभिहिता तु योगे इमां शृणु	{सम्पूर्ण व्याख्या से} कही गई है और {अब} कर्मयोग में इस {मत} को {मेरे से विस्तार से} सुन।
यया बुद्ध्या युक्तः कर्मबन्धं प्रहास्यसि	जिस {श्रेष्ठतम} मत से युक्त हुआ {तू} कर्मों के बंधन को नष्ट कर देगा।

न इह अभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमपि अस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। 2/40

इह अभिक्रमनाशः नास्ति प्रत्यवायः	इस {योग} में {पूर्वजन्मों के} पुरुषार्थ का नाश नहीं होता, उल्टाफल {भी}
न विद्यते अस्य धर्मस्य स्वल्पं अपि	नहीं होता। इस {कर्मयोग की} धारणा का अल्पांश भी {पु. संगमयुगी
महतः भयात् त्रायते	शूटिंग अनुसार अनेक जन्मों के} महान भय से रक्षण करता है। {योगुर्जा से ही सारे काम होते हैं।}

व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका इह कुरुनन्दन। बहुशाखा हि अनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनां।। 2/41

कुरुनन्दन इह व्यवसायात्मिका	हे कुरुवंशीय {हर्ष दाता} प्रह्लाद! इस {योग} में निश्चयात्मक {ज्ञान एक से आता है; अतः}
बुद्धिः एका चाव्यवसायिनां	{श्री} मत् एक {अद्वैत शिवबाबा की} ही है, जबकि {धर्मनिरपेक्ष} अनिश्चयी लोगों की
बुद्धयः हि बहुशाखा अनन्ताः	मतें निश्चय ही अनेक {द्वैतवादी विधर्मों से निकली सांप्रदायिक} शाखाओं की असंख्य हैं।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्ति अविपश्चितः। वेदवादरताः पार्थ नान्यत् अस्ति इति वादिनः।। 2/42

पार्थ वेदवादरताः अन्यत् नास्ति	हे पार्थ! वेदवाद {-विवाद} में लिप्त रहने सिवाय दूसरा मार्ग नहीं-(गी. 2-45,52,53)
इति वादिनः अविपश्चितः यां इमां	ऐसा कहने वाले {मंदिर-मूर्ति-पूजाहीन ब्रह्मा के भक्त B.ks} अविवेकीजन हैं, जो ये
पुष्पितां वाचं प्रवदन्ति	फली-फूली मीठी-2 वाणी बोलते हैं। {पश्चिम के श्रीनाथ मं. में मालपूए खाने वाले भोगी हैं।}

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदां। क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।। 2/43

कामात्मानः स्वर्गपरा	{वे सांसारिक अंतहीन} कामनाओं वाले हैं, स्वर्गीय 'सुख पाना ही परम पुरुषार्थ है',
भोगैश्वर्यगतिं प्रति जन्मकर्म	{श्रीनाथ जैसे परमार्थरहित व सांसारिक 56 भोग वाले} भोगैश्वर्य प्राप्ति हेतु जन्म-जन्मांतर के कर्म
फलप्रदां क्रियाविशेषबहुलां	फल-प्रदायी विशेष {स्वाहा-2 आदि जैसी फालतू} क्रियाकाण्डादि की बहुत बातें {करते} हैं।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तया अपहृतचेतसां। व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। 2/44

तया अपहृतचेतसां भोगैश्वर्य-	उस {मीठी वाणी} से खिंचे चित्त वाले {और दैहिक} भोग-ऐश्वर्य में {अच्छे-से}
प्रसक्तानां व्यवसायात्मिका	आसक्तजनों की, {सरासर दिखावटी और झूठी परम्पराओं में आसक्त ऐसी} निश्चयात्मक
बुद्धिः समाधौ विधीयते न	बुद्धि, {कभी भी आत्मा के 84 जन्मों की सम्पूर्ण गहराई रूप} समाधि में स्थित नहीं होती।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।। 2/45

अर्जुन वेदा त्रैगुण्यविषया	हे अर्जुन! वेद 3 गुणों के विषय वाले हैं। {यानी रजो & तमोगुणी भी हैं। तू यहाँ विष्णु लोकीय}
निस्त्रैगुण्यः नित्यसत्त्वस्थः	3 गुणों से परे, सदा {16 कलाओं से भी अतीत मेरे समान} सत्वगुण में स्थिर हुआ,
निर्द्वन्द्वः निर्योगक्षेम	{सुख-दुखादि से} द्वन्द्वमुक्त, प्राप्ति वा उसकी सुरक्षारहित बन; {क्योंकि 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'।}
आत्मवान् भव	(गीता 9-22) {अतः देहभान छोड़ सदाकाल} आत्मबिंदु की स्थिति वाला बन जा।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके। तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।। 2/46

सर्वतः सम्प्लुतोदके यावानर्थ	चारों ओर से सम्पूर्ण भरपूर {ज्ञानजल का मान-} सरोवर मिले तो जितना प्रयोजन
उदपाने तावान् विजानतः	{छोटे-2 मटमैले} पोखरों में हो, उतना {ही} विशेष {एडवांस ज्ञानसागर के} ज्ञानी
ब्राह्मणस्य सर्वेषु वेदेषु	ब्राह्मण का सभी {ब्रह्मामुखनिसृत} वेदवाक्यों {जैसी मंथनरहित मुरलियों} में होता है।

कर्मण्येवाधिकारः ते म फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुः भूर्मा ते सङ्गोऽस्तु अकर्मणि।। 2/47

ते कर्मणि एव अधिकारः फलेषु कदाच	तेरा {श्रीमद्नुसार} कर्मयोग में ही अधिकार है, {सांसारिक} फल में कभी {भी}
न मा कर्मफलहेतुः मा भूः	नहीं; {इसलिए} कर्मफल का कारण {मैं ही हूँ←ऐसे} मत बनो। {दे. गी. 3-27 से 30; इसलिए}
ते अकर्मणि संगः मा अस्तु	तुम्हारी {लोकसंग्रहार्थ} कर्मत्याग में {कभी} आसक्ति न हो। {कर्मयोगी बनना है, कर्म संन्यासी नहीं।}

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्ध्यासिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2/48

धनंजय संगं त्यक्त्वा योगस्थः	हे {सच्चीगीता एडवांस} ज्ञानधनजेता अर्जुन! आसक्ति त्यागकर, योगारूढ़ हुआ,
सिद्ध्यसिद्ध्योः समः भूत्वा	{अन्य द्वंद्वों जैसी} सफलता-असफलता में {भी} समान होकर, {कर्मफल-त्यागी बनकर}
कर्माणि कुरु समत्वं योगः उच्यते	कर्मों को कर। {हर प्रकार के द्वंद्वों में सदाकाल} समत्व {ही} योग कहा जाता है।

दूरेण हि अवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय। बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।। 2/49

धनंजय बुद्धियोगात् हि कर्म	हे ज्ञानधनजेता {अर्जुन!1 सर्वोत्तम शिव में} बुद्धियोग लगाने सिवा केवल कर्म करना
दूरेण अवरं बुद्धौ शरणं	अति नीचा है। {बड़े-2 धर्माधीश} बुद्धिमानों {की भी बुद्धि 'त्रिनेत्री शिवबाबा'} की शरण
अन्विच्छ फलहेतवः कृपणाः	ले। कर्मफल के इच्छुक कंजूस• हैं, {विश्व-कल्याणार्थ किसी को कुछ नहीं देना चाहते।}

•{कंजूस पश्चिमी सभ्यता के प्रतीक श्रीनाथ-पुजारी जैसे लोग लोक-कल्याण लिए कुछ भी त्यागना नहीं चाहते, सारे देशी गाय वाले घी के माल बेचकर भी खुद ही खा जाते हैं। अतः इन उड़ीसा जैसे गरीबों के राज्य में पूरब के जगन्नाथ का सादा भोग खाना है।} इसीलिए मुरली ता. 26/6/70 पृ.4 आदि में बोला - "सभी से फर्स्टक्लास शुद्ध खाना है- दाल(या कढ़ी), चावल, आलू।"

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलं।। 2/50

बुद्धियुक्तो इह उभे सुकृतदुष्कृते	बुद्धियोगी इस {लोक} में दोनों प्रकार के अच्छे & बुरे {माने जाने वाले} कर्म {जैसे-}
जहाति कर्मसु कौशलं	{दान-धर्म या रिश्वत, चोरी-चकारी आदि भी} छोड़ देता है। कर्मों में कुशलता {ही}
योगः तस्मात् योगाय युज्यस्व	योग है। अतः {क्षेत्ररूप अर्जुन के मुकर्रर रथ + क्षेत्रज्ञ शिवज्योति के} योग में जुट जा।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः। जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्ति अनामयं।। 2/51

हि बुद्धियुक्ता मनीषिणः कर्मजं	क्योंकि {शिवबाबा से} बुद्धि लगाने वाले ज्ञानीजन {विश्व-कल्याण के} कर्म से उत्पन्न हुए
फलं त्यक्त्वा जन्मबंधविनिर्मुक्ताः	फल को त्यागकर, जन्म {जरा-मरणादिक} बंधनों से विशेष रूप से मुक्त हुए,

अनामयं पदं गच्छन्ति	पापरहित {अतीन्द्रिय सुख वाले, कलातीत, विष्णुलोकीय} परमपद को {वैकुण्ठ में} प्राप्त करते हैं।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिः व्यतितरिष्यति। तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।2/52

यदा ते बुद्धिः श्रोतव्यस्य	जब तेरी {द्वापुर से ही विकारी बनी} बुद्धि {शास्त्र-दैहिक गुरुओं मीडिया आदि की} सुनी•-सुनाई,
श्रुतस्य च मोहकलिलं	और {विदेशियों-विधर्मियों की अंधश्रद्धायुक्त झूठी बातों के} मोह रूप कीचड़ को {भलीभाँति}
व्यतितरिष्यति तदा निर्वेदं गन्तासि	पार करेगी, तब {मिसाइलों से भस्मीभूत होने वाली दुनिया के} वैराग्य को प्राप्त होगा।

•सुनी-सुनाई बातों पर ही भारतवासियों ने दुर्गति को पाया है, (अभी भी पाते जा रहे हैं)। (मु.ता.30.1.71 पृ.4 आदि)

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला। समाधौ अचला बुद्धिः तदा योगमवाप्स्यसि।। 2/53

यदा ते श्रुतिविप्रतिपन्ना बुद्धिः समाधौ	जब तेरी •श्रुतियों से भ्रमित बुद्धि {साक्षात् आए हुए} परमात्मा की स्मृति में
निश्चलाचला स्थास्यति	अविचल स्थिर होगी, {तभी अति सूक्ष्म आत्मस्टार रूपी रिकॉर्ड के अंदर 84 जन्मों के}
तदा योगं अवाप्स्यसि	{स्वदर्शन चक्रगत सागर-मंथन में लगेगी,} तब योग {की समाधिगत स्थिति} को पा लेगा।

•इन शास्त्र आदि पढ़ने से (आजतक भी) किसको सद्गति नहीं मिली है। मनुष्य-आत्माओं की सद्गति का ज्ञान इन शास्त्रों में नहीं है। (मानवीय) गीता से भी किसी की सद्गति हो नहीं सकती। (मुरली ता.20.5.92 पृ.1 आदि)

[54-72 स्थिरबुद्धि पुरुष के लक्षण और महिमा]

अर्जुन उवाच-स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव। स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किं।। 2/54

केशव	('क'+ईश अर्थात्) हे 'ब्रह्मा'{रूपी बेसमझ बैल} के ईश्वर {बेहद नेपाल के चेतन पशुपति नाथ}!
स्थितप्रज्ञस्य समाधिस्थस्य	स्थिर बुद्धि की, {अर्थात् (सं.+अधि+स्थस्य) निरंतर आत्मस्टार की} पूरी गहराई में स्थिर की

का भाषा स्थितधीः किं	क्या परिभाषा है? स्थिर बुद्धि {आहार-विहार, रहन-सहन आदि में} कैसे
प्रभाषेत किमासीत किं व्रजेत	बोलता है, कैसे बैठता है {और} कैसे चलता है? {स्थिर बुद्धि की सारी माहिती चाहिए}

भगवानुवाच-प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्। आत्मनि एव आत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञः तदा उच्यते।। 2/55

पार्थ मनोगतान् सर्वान् कामान्	हे पृथ्वीपति! मनसा संकल्पों में चलने वाली सभी कामनाओं• को {मनु-पुत्र मानव}
यदा प्रजहाति आत्मना आत्मनि	जब भली-भाँति त्यागता है, अपने आप से आत्म-स्टार में {या परमात्मस्मृति में}
एव तुष्टः तदा स्थितप्रज्ञरुच्यते	ही संतुष्ट रहता है, तब स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है। {अन्यथा नहीं कह सकते}

•'इच्छामात्रमविद्या' (मु.ता.10/4/68) (दे. गीता-4-19; 6/4-18-24 इत्यादि)

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिः उच्यते।। 2/56

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु	दुःखों में उद्वेग-{बेचैनी} से रहित मन वाला, {लौकिक} सुखों में {अनासक्त रहने वाला}
विगतस्पृहः वीतरागभयक्रोधः	इच्छारहित {तथा पुरुषोत्तम संगमयुग में खास} राग-भय-क्रोध से रहित, {ज्ञान-नेत्र से}
मुनिः स्थितधीः उच्यते	{इस प्रकार ईश्वरीय महावाक्यों को जानने वाला} मनन चिंतनशील व्यक्ति स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः तत्तत्प्राप्य शुभाशुभं। नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 2/57

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः तत्-2	जो {सिवा परमपिता+परमात्मा के} सब ओर से पूरा स्नेहरहित हुआ, उन-2 {सांसारिक}
शुभाशुभं प्राप्य नाभिनन्दति न	शुभ या अशुभ को पाकर {साक्षीदृष्टा की भाँति} न पूरा आनंदित होता है, न {दुःखी होकर}
द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता	द्वेष करता है, उसकी {पारखी & निर्णयात्मक} बुद्धि दृढ़तापूर्वक {आत्मा में} स्थिर है।

यदा संहरते चायं कूर्मः अङ्गानि इव सर्वशः। इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2/58

च यदा अयं कूर्मः अंगानि इव	और जब यह {योगी} कछुए के अंगों की तरह {मन के संकल्पों सहित श्रेष्ठ & भ्रष्ट, दोनों}
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः सर्वशः	इन्द्रियों को इन्द्रियों के {रूप-रस-गंध आदि} विषय भोग सब ओर से {निरंतर}
संहरते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता	संपूर्ण खींच लेता है, {तब} उस योगी की बुद्धि दृढ़ता से आत्मस्थिर हो जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं रसः अपि अस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।2/59

निराहारस्य देहिनः विषया विनिवर्तन्ते	विषय-भोग-त्यागी देहधारी पुरुष के भोग {तो} विशेषतः हटते हैं;
रसवर्जं अस्य	{किंतु} रस लेने की {पूर्व अनुभूतियों वाली मानसिक} आसक्ति नहीं हटती। {अर्थात्} इस {राजयोगी} की {तो}
रसः अपि परं दृष्ट्वा निवर्तते	आसक्ति भी {कलातीत अतीन्द्रिय सुख के} परमार्थ को देखकर {पूरी ही} हट जाती है।

यततो हि अपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। 2/60

हि कौन्तेय यततः विपश्चितः	क्योंकि हे {देह-अभिमाननाशिनी कुं/देहं दारयतीति} कुन्ती के पुत्र! प्रयत्न करते हुए बुद्धिमान्
पुरुषस्य अपि प्रमाथीनि	{पारखी} पुरुष की भी अच्छे-से मथ डालने वाली {खास नेत्र और कामेन्द्रिय सहित अन्य}
इन्द्रियाणि मनः प्रसभं हरन्ति	इन्द्रियाँ {अर्जुन-रथ के सर चढ़े चंचल कपिध्वज वाले} मन को बलपूर्वक खींच लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः। वशे हि यस्य इन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।2/61

तानि सर्वाणि संयम्य मत्परः युक्तः	उन सब {इन्द्रियों} को पूरा वश करके मेरे आश्रित हुआ, मुझ {शिव} में {ही} मन
आसीत हि यस्य इन्द्रियाणि वशे	लगा; क्योंकि जिस {मन-बुद्धि वाली ज्योतिबिंदु आत्मा} की इन्द्रियाँ वश में हैं,
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता	उसकी बुद्धि {जन्म-2 चंचल बने मन की अस्थिरता से हटकर} दृढ़तापूर्वक स्थिर रहती है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषु उपजायते। सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधः अभिजायते।।2/62

विषयान् ध्यायतः पुंसः तेषु संगः	विषय{-भोगों} का ध्यान करने वाले पुरुष को उन {विषयों} में आसक्ति/लगाव
उपजायते संगात् कामः संजायते	उत्पन्न होता है। आसक्ति से {मनसा संकल्प में} कामना भली-भाँति पैदा होती है,
कामात् क्रोधः अभिजायते	{दैहिक विकारी} कामना {प्रायः पूरी न होने} से {अनियंत्रित} क्रोध {जोर से} उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।2/63

क्रोधात् सम्मोहः भवति सम्मोहात्	क्रोध से सम्पूर्ण मोह/मूढ़ता आती है,भरपूर मूढ़ता {से जड़-जड़ीभूत बुद्धि} द्वारा
स्मृतिविभ्रमः स्मृतिभ्रंशात्	स्मृति-नाश होता है, स्मृति के भ्रष्ट होने से {परख & निर्णयशक्तिरूपा समझ शक्ति/}
बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति	बुद्धि नष्ट होती है {और} बुद्धि नष्ट होने से {धर्म पर अनिश्चय रूपी} मृत्यु होती है।

रागद्वेषवियुक्तैः तु विषयान् इन्द्रियैः चरन्। आत्मवश्यैः विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।2/64

तु रागद्वेषवियुक्तैः विधेयात्मा	परंतु राग-द्वेष से विहीन, अनुशासित मन वाला, {पक्षपात रहित साक्षीदृष्टा राजयोगी,}
आत्मवश्यैः इन्द्रियैः विषयान्	{राजयोग-शासित} आत्मा की वशीभूत इन्द्रियों से {धर्मानुकूल/ हिंसाहीन समुचित} भोग
चरन् प्रसादं अधिगच्छति	भोगते हुए {अविनाशी} प्रसन्नता को पाता है। {सुख देने से ही सदा सुख होता है।}

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिः अस्य उपजायते। प्रसन्नचेतसो हि आशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।2/65

प्रसादे अस्य सर्वदुःखानां हानिरुपजायते	प्रसन्नता से इस {योगी} के {जन्म-जरादि} सब दुःखों का नाश हो जाता है;
हि प्रसन्नचेतसः बुद्धिः आशु पर्यवतिष्ठते	क्योंकि प्रसन्नचित्त की बुद्धि शीघ्र, अच्छे-से {आत्मा में} स्थिर होती है।

नास्ति बुद्धिः अयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतः शान्तिः अशान्तस्य कुतः सुखं।।2/66

अयुक्तस्य बुद्धिः नास्ति च	{जो} योगी नहीं, उसको बुद्धि नहीं होती और {बुद्धिमानों की बुद्धि शिव से दूर}

अयुक्तस्य भावना न चाभावयत:	भोगी व्यक्ति में भावना नहीं {होती} और {श्रद्धा-} भावनाहीन {शान्त+नु जैसे} को
शांति: न अशांतस्य सुखं कुत:	शान्ति नहीं होती; अशांत व्यक्ति को सुख कहाँ होगा? {नहीं हो सकता ना।}

इन्द्रियाणां हि चरतां यत् मनोऽनुविधीयते। तत् अस्य हरति प्रज्ञां वायु: नावमिवाम्भसि।। 2/67

हि यत् मन: चरतां इन्द्रियाणां	क्योंकि जो {चंचल} मन {दैहिक भोगों में} विचरण करती हुई {कोई भी ज्ञान या कर्म}-इन्द्रियों का
अनुविधीयते तत् वायु: अम्भसि	अनुसरण करता है, वह {मन तीव्रगति से बहती} वायु द्वारा पानी में {तैरती}
नावं इव अस्य प्रज्ञां हरति	{हलकी} नाव की तरह इस {भोगी का बेलगाम दौड़ता अश्व रूप मन} बुद्धि को हर लेता है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वश:। इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्य: तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2/68

महाबाहो तस्मात् यस्य इन्द्रियाणि	हे {अष्टमूर्तिरूप सहयोगियों रूपी} लम्बी भुजाओं वाले! इसलिए जिसकी इन्द्रियाँ
इन्द्रियार्थेभ्य: सर्वश: निगृहीतानि	इन्द्रिय-भोगों से {मन-वचन-कर्म द्वारा,} सब प्रकार {विकारों से} रोक ली गई हैं,
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता	उस {संयमित मन वाले ज्ञानी और सहज राजयोगी} की बुद्धि भली-भाँति {ज्योतिबिंदु आत्मस्टार में} स्थिर रहती है।

य निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने:।।2/69

सर्वभूतानां या निशा तस्यां संयमी	सभी {सांसारिक} प्राणियों के लिए जो {आध्यात्म} रात्रि है, उसमें {राज} योगी
जागर्ति यस्यां भूतानि जाग्रति	जागता है। जिस {मानवीय भौतिकता} में {भ्रमित} प्राणी {स्वर्गीय दिन समझ} जागता है,
सा पश्यत: मुने: निशा	वह {पु. संगमयुगी सच्चीगीता एडवांस ज्ञान के 60 वर्षीय मंथनकर्ता} मननशील मुनि के लिए रात्रि है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमाप: प्रविशन्ति यद्वत्। तद्वत्कामा: यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।। 2/70

आपूर्यमाणं अचलप्रतिष्ठं समुद्रं यद्वत्	चारों ओर से भरपूर अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में जैसे {चेतन ज्ञान-नदियों की}

आप: प्रविशन्ति तद्वत् यं सर्वे कामा:	जलधाराएँ प्रवेश पाती हैं, वैसे ही जिसकी {अच्छी-बुरी अपनी} सब •इच्छाएँ
प्रविशन्ति	{यानी संकल्प-विकल्पों की लहरें उस अगाध ज्ञान-सागर शिवबाबा की जलमई में समा जाती हैं/} प्रवेश पाती हैं,
स शांतिं आप्नोति कामकामी न	वो {ही आत्मा} शांति {के सागर} को पाती है; कामनाओं का इच्छुक नहीं {पाता}।

•{तुम बच्चे जानते हो हमको बाप (भगवान) मिला तो सब-कुछ मिला। (मु.ता.27/6/1965 पृ.2 आदि)}

विहाय कामान्य: सर्वान्पुमान् चरति नि:स्पृह:। निर्ममो निरहङ्कार: स शान्तिमधिगच्छति।।2/71

य: पुमान् सर्वान् कामान् विहाय	जो पुरुष सारी {श्रीमतविहीन सांसारिक भौतिक} कामनाओं को {यहाँ ही} छोड़कर,
नि:स्पृह: निर्मम: निरहंकार:	लालसारहित, ममताहीन {और} निरहंकारी {निर्मान-नम्रचित्त} भाव का {श्रेष्ठ}
चरति स: शांतिं अधिगच्छति	आचरण करता है, वह {दीर्घकालीन नैष्ठिकी परमब्रह्म की} शांति प्राप्त करता है।

एषा ब्राह्मी स्थिति: पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति। स्थित्वा अस्यां अन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणं ऋच्छति।।2/72

पार्थ एषा ब्राह्मी स्थिति:	हे अर्जुन! यह परंब्रह्म परम+ईश्वर से उत्पन्न {सर्वोत्कृष्ट अव्यक्त और अविनाशी} अवस्था है।
एनां प्राप्य न विमुह्यति	इसे प्राप्त करके {योगी मनुष्य किसी व्यक्ति या वस्तु के} मोह में नहीं पड़ता {और कल्पान्त में}
अन्तकाले अपि अस्यां स्थित्वा	{महाविनाश की} महामृत्यु में भी इस {अव्यक्त&अविनाशी स्थिति} में स्थिर होकर
ब्रह्मनिर्वाणं ऋच्छति	{नं.वार संगठित पंचमुखी ब्रह्माओं में से ऊर्ध्वमुखी} परंब्रह्म के निर्वाणधाम को पाता है।